Serving Education for Last 40 Years

NEERAJ®

M.P.S.E.-8

भारत में राज्य की राजनीति

(State Politics in India)

Chapter Wise Reference Book
Including Many Solved Sample Papers

Based on

I.G.N.O.U.

& Various Central, State & Other Open Universities

By: *Arun Chatterjee,* M.A. (Pol. Science, Sociology, Philosophy)

NEERAJ PUBLICATIONS
(Publishers of Educational Books)

Mob.: 8510009872, 8510009878 E-mail: info@neerajbooks.com
Website: www.neerajbooks.com

MRP ₹ 400/-

Content

भारत में राज्य की राजनीति

(State Politics in India)

Question Paper—June-2024 (Solved) 1
Question Paper—December-2023 (Solved) 1-2
Question Paper—June-2023 (Solved) 1-2
Question Paper—December-2022 (Solved) 1-2
Question Paper—Exam Held in March-2022 (Solved) 1
Question Paper—Exam Held in August-2021 (Solved) 1-3
Question Paper—Exam Held in February-2021 (Solved) 1-2
Question Paper—December, 2019 (Solved) 1-2
Question Paper—June, 2019 (Solved) 1-2
Question Paper—December, 2018 (Solved) 1-2
Question Paper—June, 2018 (Solved) 1-2
Question Paper—December, 2017 (Solved) 1-4
Question Paper—June, 2017 (Solved) 1-2

S.No.	Chapterwise Reference Book	Page
1.	भारत में राज्यीय राजनीति का विकास	1
2.	विश्लेषण के दृष्टिकोण	18
3.	भारतीय विविधताओं की प्रकृति व राष्ट्रवादी प्रतिक्रियाएँ	41
4.	संविधान व्यवस्था में राज्य	53
5.	राज्य प्रणाली का विकास	73

S.No.	Chapterwise Reference Book	Page

6. चुनाव और चुनावी राजनीति 91

7. दल और दलीय व्यवस्था 110

8. भारतीय राज्यों में मतभेद प्रतिमान और विरोधान्दोलन 131

9. विकास के मुद्दे और क्षेत्रीय विषमताएँ 142

10. कृषि परिवर्तन एवं भूमि सुधार 157

11. उद्योग-धंधे और श्रमिक वर्ग 166

12. भूमण्डलीकरण, उदारीकरण : राज्यीय राजनीतिक-तात्पर्य 179

13. अन्तर्राज्यीय विवाद : जलीय व क्षेत्रीय सीमाएँ 189

14. साम्प्रदायिक राजनीति के प्रतिमान 194

15. दलितों और पिछड़े वर्गों की अधिकार-माँग 217

16. राज्यीय राजनीति में भाषायी एवं नृजातीय अल्पसंख्यक 230

17. भारत में राज्य स्वायत्तता आन्दोलन 242

■ ■

Sample Preview
of the
Solved
Sample Question
Papers

Published by:

NEERAJ
PUBLICATIONS
www.neerajbooks.com

QUESTION PAPER

June – 2024

(Solved)

भारत में राज्य की राजनीति

M.P.S.E.-8

(State Politics in India)

समय : 2 घण्टे] *[अधिकतम अंक : 50*

***नोट :** प्रत्येक अनुभाग में से कम-से कम **दो** प्रश्न चुनते हुए, कुल **पांच** प्रश्नों के उत्तर दीजिए। सभी प्रश्नों के अंक **समान** हैं।*

अनुभाग-I

प्रश्न 1. स्वतंत्रता के बाद के युग में भारत में राज्य की राजनीति की प्रमुख विशेषताओं का संक्षेप में वर्णन कीजिए।

उत्तर–संदर्भ–देखें–अध्याय-1, पृष्ठ-3, प्रश्न 1

प्रश्न 2. भारतीय राजनीति में धार्मिक विविधता की प्रकृति की विवेचना कीजिए। राष्ट्रवादियों की मुख्य प्रतिक्रियाएँ क्या हैं?

उत्तर–संदर्भ–देखें–अध्याय-3, पृष्ठ-44, प्रश्न 2

प्रश्न 3. भारतीय राजनीति में केन्द्र-राज्य संबंधों और तनाव क्षेत्रों का समालोचनात्मक परीक्षण कीजिए।

उत्तर–संदर्भ–देखें–अध्याय-4, पृष्ठ-54, प्रश्न 1, पृष्ठ-62, प्रश्न 5

प्रश्न 4. राज्यों के पुनर्गठन की रूपरेखा तैयार कीजिए। अंतर्राज्यीय संबंधों पर पुनर्गठन की परिणामी समस्याएँ क्या हैं?

उत्तर–संदर्भ–देखें–अध्याय-5, पृष्ठ-76, प्रश्न 4

प्रश्न 5. निम्नलिखित पर संक्षिप्त टिप्पणियाँ लिखिए–

(क) भारत में चुनाव सुधार

उत्तर–संदर्भ–देखें–अध्याय-6, पृष्ठ-96, प्रश्न 3

(ख) भारत में क्षेत्रीय विषमताएँ

उत्तर–संदर्भ–देखें–अध्याय-9, पृष्ठ-147, प्रश्न 2

अनुभाग-II

प्रश्न 6. उन कारकों का समालोचनात्मक परीक्षण कीजिए जिनके कारण भारत में बहुदलीय प्रणाली का जन्म हुआ।

उत्तर–भारत में बहुदलीय प्रणाली बहुदलीय पार्टी व्यवस्था है, जिसमें छोटे क्षेत्रीय दल अधिक प्रबल हैं। राष्ट्रीय पार्टियां वे हैं जो चार या अधिक राज्यों में मान्यता प्राप्त हैं, जो विभिन्न राज्यों में समय-समय पर चुनावी परिणामों की समीक्षा के आधार पर चुनाव अयोग देता है। भारत में बहुदलीय प्रणाली विकास के उत्तरदायी घटनाक्रम इस प्रकार से हैं।

इसे भी जोड़ें–संदर्भ–देखें अध्याय-7, पृष्ठ-118, प्रश्न 3

प्रश्न 7. भारतीय राजनीति में असंतोष और विरोध आंदोलनों की प्रकृति का परीक्षण कीजिए।

उत्तर–संदर्भ–देखें–अध्याय-8, पृष्ठ-131, 'अध्याय का विहंगावलोकन'

प्रश्न 8. आर्थिक सुधारों और वैश्वीकरण के लिए जिम्मेदार कारकों और भारतीय राज्य की राजनीति पर इसके प्रभाव की व्याख्या कीजिए।

उत्तर–संदर्भ–देखें–अध्याय-12, पृष्ठ-181, प्रश्न 1, पृष्ठ-185, प्रश्न 3

प्रश्न 9. भारतीय संघवाद में जल और क्षेत्रीय विवादों का परीक्षण कीजिए।

उत्तर–संदर्भ–देखें–अध्याय-13, पृष्ठ-190, प्रश्न 1

प्रश्न 10. निम्नलिखित पर संक्षिप्त टिप्पणियाँ लिखिए–

(क) भारतीय राजनीति में पिछड़ी जातियों की भूमिका

उत्तर–संदर्भ–देखें–अध्याय-15, पृष्ठ-222, प्रश्न 3

(ख) भारतीय राजनीति में नृजातीय अल्पसंख्यक

उत्तर–संदर्भ–देखें–अध्याय-16, पृष्ठ-237, प्रश्न 1

■■

NEERAJ PUBLICATIONS

QUESTION PAPER

December – 2023

(Solved)

भारत में राज्य की राजनीति **M.P.S.E.-8**

(State Politics in India)

समय : 2 घण्टे] *[अधिकतम अंक : 50*

नोट : *प्रत्येक अनुभाग में से कम-से कम* **दो** *प्रश्न चुनते हुए, कुल* **पांच** *प्रश्नों के उत्तर दीजिए। सभी प्रश्नों के अंक* **समान** *हैं।*

भाग-I

प्रश्न 1. 1970 के पश्चात् राज्यों की राजनीति के बदलते स्वरूप का विश्लेषण कीजिए।

उत्तर–संदर्भ–देखें–अध्याय-1, पृष्ठ-3, 'सत्तर का दशक और राज्य की राजनीति'

प्रश्न 2. भारत में संघ-राज्य के रिश्तों को प्रभावित करने वाले मुद्दों का परीक्षण कीजिए।

उत्तर–संदर्भ–देखें–अध्याय-4, पृष्ठ-62, प्रश्न 5

प्रश्न 3. राज्यों की स्वायत्तता की माँग के क्या कारण हैं? आप अपने दृष्टिकोण पर प्रकाश डालिए।

उत्तर–संदर्भ–देखें–अध्याय-5, पृष्ठ-81, प्रश्न 5

प्रश्न 4. निम्नलिखित पर संक्षिप्त टिप्पणियाँ लिखिए–

(क) भारत में विरोध आन्दोलनों की विशेषताएँ

उत्तर–भारत के लगभग सभी राज्यों में विरोध-आन्दोलनों के कुछ अभिलक्षण और प्रतिमान परिलक्षित हुए हैं। मुख्य प्रतिमान निम्नलिखित हैं–

(1) औपचारिक राजनीतिक संस्थाओं से मोहभंग।
(2) सभ्य समाज में हिंसा में वृद्धि।
(3) जन-कल्याण और सेवाएँ प्रदान करने में राज्य की विफलता।
(4) सामाजिक व राजनीतिक शक्तियों का उभरना।
(5) अवपीड़न, समंजन और दमन के रूप में प्रत्युत्तर।

जन-आन्दोलन व विरोध-प्रदर्शन सामान्य रूप से लोक संस्कृति में ही सम्मिलित हो गये हैं, जिन्हें वैश्विक संस्कृति के रूप में बढ़ावा दिया जाता है। मार्क्सवादी विद्वान इसका श्रेय भारतीय समाज के बहुवंशीय अभिलक्षण और सर्वव्यापक पदानुक्रम को देते हैं, तथापि कुछ विद्वान इसकी आलोचना करते हुए कहते हैं कि विरोध आन्दोलन परम्परा और आधुनिकता के मध्य संघर्ष का प्रतिफल है। लोगों की बढ़ती उम्मीदों का इंकलाब राजनीतिक न्याय से नहीं आता और यहीं से उत्पन्न होता है–राजनीतिक अस्थिरता और अव्यवस्था के मध्य भेद। रजनी कोठारी का विचार है कि इस प्रकार के संसदीय लोकतन्त्र में प्रत्यक्ष कार्यवाही की आवश्यकता होती है, जिससे राज्य की कायापलट हो सके।

नक्सलवादी आन्दोलनों के विभिन्न रंग शोषण के तीन स्रोतों के विरुद्ध विरोध प्रकट करते हैं, जैसे–असमान व शोषणकारी आर्थिक सम्बन्ध, दमनकारी जाति व्यवस्था। उनके अनुसार साम्राज्यवादी शक्तियों के साथ मिलकर और सामन्ती-पूँजीवादी विचारधारा को अपनाकर ये शोषक वर्ग गरीब जनता का शोषण करते हैं। इस समस्या का समाधान वर्तमान राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था को उखाड़ फेंकने में निहित है और अपने लक्ष्य की प्राप्ति हेतु हिंसक साधनों को अपनाना इसका धर्म है।

नक्सलवादी आन्दोलन 1967 में पश्चिम बंगाल के नक्सलबाड़ी क्षेत्र में कानू सान्याल और चारू मजूमदार द्वारा आरम्भ किया गया था, जो कुछ ही वर्षों में अनेक राज्यों में फैल गया। वे राज्य हैं–आन्ध्र प्रदेश, बिहार, झारखण्ड, छत्तीसगढ़, उड़ीसा, पंजाब व उत्तर प्रदेश। छत्तीसगढ़ सन 2000 तक मध्य प्रदेश का भाग था और वहाँ की जनता ने अपने इस क्षेत्र को मध्य प्रदेश से अलग करवाने के लिए शासन के साथ संघर्ष करते हुए आन्दोलन किया, जिसे 'छत्तीसगढ़ मुक्ति मोर्चा आन्दोलन' का नाम दिया गया। यह आन्दोलन स्पष्ट करता है कि सभ्य समाज के कुछ वर्गों और सरकार के मध्य सम्बन्ध सदैव अन्योन्य नहीं होता और यह भी हो सकता है कि वे परस्पर विरोधी हों। अत: गहरा दोष सभ्य समाज में निहित है, जो प्रभुत्वसम्पन्न और छोटे अधिकारी समूहों के मध्य विद्यमान होता है। समाज गहन रूप से संघर्षकारी और पदानुक्रमिक रूप से संगठित स्थान है, जिसमें सम्पन्न-धनी व उच्च जाति-समूह राज्य का सामाजिक आधार बनाते हैं, जबकि दूसरे समूह विपन्न राज्यों व प्रबल समूहों के द्वारा दबाये जाते हैं। यह समूह ही है, जो विरोध प्रदर्शन करता है और हित सम्बन्धी दोनों शृंखलाओं को चुनौती देता है, जैसे–प्रभावी समूह व राज्य का हित एक सामाजिक आन्दोलन के रूप में।

छत्तीसगढ़ में श्रमिक संघर्ष की जड़ें विकास और आधुनिकीकरण परियोजना में पायी जाती हैं, जो उन्हें उनके मौलिक अधिकारों से वंचित करती है और उनके लिए कष्ट व कंगाली लाकर उनका

NEERAJ PUBLICATIONS

Sample Preview
of
The Chapter

Published by:

NEERAJ
PUBLICATIONS
www.neerajbooks.com

भारत में राज्यीय राजनीति
(STATE POLITICS IN INDIA)

भारत में राज्यीय राजनीति का विकास

1

NEERAJ PUBLICATIONS www.neerajbooks.com

अध्याय का विहंगावलोकन

स्वतन्त्रता प्राप्ति के उपरान्त प्रथम दो दशकों में राज्यों की राजनीति केन्द्र के प्रभाव में ही अंकुरित हुई, जिसने भारत में राष्ट्र-राज्य निर्माण के अनुशीलन पर ध्यान केन्द्रित किया। इस काल में राज्य विकास के नेहरूवादी आदर्श और कांग्रेस के एकदलीय प्रभुत्व ने भारत में राजनीति को अभिव्यक्ति प्रदान की। राज्यों की राजनीति मुख्य रूप से राष्ट्रीय राजनीति का ही प्रतिरूप थी। भारतीय राजनीतिक व्यवस्था में केन्द्र सरकार की स्थिति काफी प्रभावशाली थी और राज्यों की राजनीति को द्वितीय स्थान प्राप्त था। केन्द्र सरकार के दिशा-निर्देश के अनुसार राज्यों की सरकारों ने अनेक कदम उठाए, जिससे राष्ट्र-निर्माण को बल प्राप्त हो, जैसे–भूमि सुधार और सामुदायिक विकास कार्यक्रम। केन्द्र के साथ ही कई राज्यों में भी कांग्रेस की सत्ता अस्तित्व में थी, जो साम्प्रदायिक हितों का प्रतिनिधित्व करती थी और दल के भीतर विभिन्न स्वार्थी गुट राष्ट्रीय स्तर पर स्वार्थी दल के नेतृत्व के उपांग थे। राज्यपाल केन्द्र में अनुकूल सरकार की यथा नियुक्तियों के रूप में कुछेक एक को छोड़कर, निर्विवादात्मक रहते थे, जो एक प्रभावी प्रतिमान था। किन्तु साथ ही राज्यों की राजनीति के अन्तर्गत एक ही समय में असमयता प्रतिमान भी परिलक्षित हुए, जिन्होंने राजनीति के प्रभाव प्रतिमान को चुनौती दी; जैसे–कांग्रेस की प्रमुख स्थिति और राज्यों के प्रभाव की स्थिति, राज्यों की राजनीति की गौण या द्वितीयक स्थिति। स्वतन्त्रता प्राप्ति के उपरान्त कुछ ही वर्षों के अन्दर उत्तर-पूर्वी भारत में नागा और मिजो विद्रोह आरम्भ हो गये। जम्मू-कश्मीर में जनमत मोर्चा आन्दोलन आरम्भ हो गया और दक्षिण भारत में राज्यों के पुनर्गठन की माँग तेज हो गयी। बिहार, उत्तर प्रदेश, केरल और पश्चिम बंगाल में समाजवादियों और वामपंथियों तथा उत्तर भारतीय राज्यों में जनसंघ तथा पंजाब में अकाली दल ने, मिलकर लोगों को कांग्रेस के खिलाफ विभिन्न मुद्दों पर एकजुट किया। महाराष्ट्र व उत्तर प्रदेश में आर.पी.आई. के नेतृत्व में दलित आन्दोलन, महाराष्ट्र में दलित पंथेर, उत्तर भारत में जनसंघ, राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ व उनके सम्बद्ध दलों के गौ-रक्षा आन्दोलन, हिन्दी भाषा प्रसार हेतु समाजवादी आन्दोलन और तमिलनाडु में हिन्दी भाषा थोपे जाने का विरोध व भारत में मद्रास और तमिलनाडु के विच्छेद हेतु माँग राज्यों की राजनीति के प्रतिमानों के लिए नृजातीय आयामों के आरम्भिक उदाहरण हैं। कांग्रेस के आधिपत्य को गुजरात व राजस्थान में स्वतन्त्र, जैसे–रूढ़िवादी दलों ने भी चुनौती दी और इस घटनाक्रम से प्रभावित **सेलिग हैरिसन** ने 1950 के दशक को 'सर्वाधिक खतरनाक दशक' घोषित कर दिया।

साठ और सत्तर के दशक में राज्यों की राजनीति के प्रतिमानों में परिवर्तन नेहरू जी की मृत्यु के बाद हुए। कांग्रेस पार्टी का पतन

और इन्दिरा गाँधी का उदय इन दो दशकों के मध्य राज्यीय राजनीति के सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण अभिलक्षणों में से एक रहा। कृषि कार्य पर ध्यान आकृष्ट करते हुए चौ. चरण सिंह ने भारतीय क्रान्ति दल का गठन किया। वे दो दशकों तक उत्तर भारत को राजनीति में एक सशक्त वर्ग को नेतृत्व और मंच प्रदान करते रहे। इस अवधि में वे बिहार व हरियाणा में राज्य-स्तरीय नेताओं को साथ लेकर उत्तर भारत की राजनीति पर छाये रहे। उत्तर प्रदेश के नक्शेकदम पर कृषि वर्गों के मध्य प्रबल सामाजिक आधारों को लेकर बड़ी संख्या में राज्यों में सशक्त क्षेत्रीय नेताओं का उदय हुआ। इन नेताओं और पार्टियों ने क्षेत्रीय मुद्दों पर ध्यान आकृष्ट किया और केन्द्र-राज्य सम्बन्धों को सुधारे जाने की माँग की। राज्यपाल की भूमिका पर संदेह किया जाने लगा और केन्द्र-राज्य सम्बन्धों में परिवर्तन की माँग उठी।

क्षेत्रीय नेताओं व राजनीतिक दलों के मध्य समन्वय प्रक्रिया ध्यानाकर्षण का केन्द्र बन गयी और इनमें से कुछ नेताओं ने राष्ट्रीय स्तर के नेताओं की अर्हता प्राप्त कर ली। उन्होंने अपनी शक्ति राज्यीय राजनीति से ही अर्जित की और क्षेत्रीय राजनीतिक दलों का नेतृत्व किया। आपातकाल लागू किये जाने पर अनेक राज्यीय व राष्ट्रीय नेताओं तथा दलों को यह अवसर प्रदान किया कि वे प्रभुत्वपूर्ण कांग्रेस के विरुद्ध एकजुट हो जाएँ। जनता पार्टी के नेतृत्व वाली सरकारों ने केन्द्र व राज्य दोनों में कुछ कदम उठाये, जिनमें राज्यीय राजनीति की अनुगूँज थी। राज्य स्तरीय नेताओं और राजनीतिक दलों ने न केवल इन्दिरा गाँधी के प्रतीक वाली कांग्रेस के नेतृत्व व संगठन को चुनौती दी, अपितु केन्द्र-राज्य सम्बन्धों में राज्यों हेतु एक अधिक युक्तियुक्त स्थिति भी प्राप्त करने का प्रयत्न किया। सत्तर के दशक में इन्दिरा गाँधी को जे.पी. आन्दोलन और गुजरात आन्दोलन द्वारा चुनौती मिली।

अस्सी के दशक के बाद घटनाक्रम ने भारत में राज्यीय राजनीति के बदलते दौर और राष्ट्रीय राजनीति में राज्यों की भूमिका में और अधिक योगदान दिया। यह घटनाक्रम इस प्रकार था—राष्ट्रीय और राज्यीय स्तरों पर गठबन्धन राजनीति की बारम्बारता, भूमण्डलीकरण, नेतृत्व की पुनः एक और पीढ़ी का उद्‌गमन, नृजाति जैसे दलित पिछड़े वर्ग, जनजाति, भाषा आदि पर आधारित बहुत-सी पहचानों की अधिकार-माँग, किसानों के आन्दोलन, उत्तर-पूर्व, जम्मू-कश्मीर और पंजाब में विप्लव तथा स्वायत्तता आन्दोलन। बहुजन समाज पार्टी के रूप में उत्तर भारत में दलितों के, बिहार व उत्तर प्रदेश में जनता दलों के विभिन्न अवतरणों के रूप में पिछड़े वर्गों के और विभिन्न जातियों के साथ-साथ धर्म से जुड़े गैर-पार्टी, मोर्चों के राजनीतिकरण ने भारत में राज्यीय राजनीति को नये आयाम प्रदान किये। इस काल में उत्तर प्रदेश व पंजाब में भारतीय किसान संगठनों, महाराष्ट्र में 'शेतकारी संगठन', गुजरात में 'खेदयुत समाज' और कर्नाटक में 'कर्नाटक राज्य रैयत संघ' के रूप में धनिक किसानों का उद्‌गमन देखा गया।

बीसवीं शताब्दी का अन्तिम दशक आते-आते राज्यीय राजनीति ने एक नया स्वरूप ले लिया। एक ओर जहाँ भूमण्डलीकरण ने केन्द्र की स्थिति को दुर्बल किया तो वहीं दूसरी ओर राज्यों को इस योग्य बना दिया कि राष्ट्रीय के साथ-साथ राज्यीय राजनीति में भी नेतृत्व कर सकें। एफ.डी.आई. से कुछ राज्य लाभान्वित हुए जबकि अन्य पिछड़ गये।

लॉरेन्स सेज की पुस्तक 'फैडरलिज्म विदाउट ए सेंटर' के अनुसार भूमण्डलीकरण ने भारत में राज्यों को इस योग्य बना दिया है कि वे अपनी कार्यसूचियों का अनुसरण करने हेतु स्वतन्त्र सत्ता के रूप में काम कर सकें, अन्तर्राष्ट्रीय दानदाताओं से सीधे सौदेबाजी कर सकें तथा विभिन्न एजेन्सियों के साथ समझौता कर सकें। भूमण्डलीकरण अन्तर-सरकारी संस्थाओं के अपरदन में भी परिणत हुआ है। सेज का यह दावा है कि अन्तर-सरकारी सहयोग ने ही अन्तर-आधिकारिक प्रतिस्पर्द्धा की राह आसान की।

भूमण्डलीकरण का प्रभाव दलीय प्रणाली पर भी पड़ा और अधिकांश राज्यों में दो या दो से अधिक पार्टियाँ मुख्य दलों के रूप में उभरीं, जबकि पश्चिम बंगाल में अपवादस्वरूप एक ही दल का प्रभाव रहा। राज्य-स्तरीय पार्टियाँ विशिष्ट क्षेत्रों, धर्म और जाति की ओर अभिविन्यस्त होती हैं, जो चुनावी गठबन्धनों, मोर्चों और गठबन्धन सरकारों में साझीदारों के माध्यम से अपने प्रभाव का प्रयोग करने में समर्थ होती हैं, जैसे—उत्तर प्रदेश, पंजाब व मध्य प्रदेश में अपना आधार रखने वाली बहुजन समाज पार्टी, उत्तर भारतीय राज्यों में समाजवादी पार्टी, राष्ट्रीय लोकदल, भारतीय राष्ट्रीय लोकदल, राष्ट्रीय जनता दल, राष्ट्रवादी कांग्रेस पार्टी, अकाली दल, पूर्व में उड़ीसा में बीजू जनता दल, दक्षिण में तेलुगुदेशम पार्टी, ऑल इण्डिया अन्ना द्रमुक मुन्नेत्र कड़गम और पश्चिम में शिवसेना आदि।

राजनीतिक दलों की भूमिका आमतौर पर चुनावी संगठन पर आधारित होती है, किन्तु दलितों व अन्य पिछड़े वर्गों जैसे नव सामाजिक बलों के उद्‌गमन ने राज्य में गैर-चुनावी संघटन में भी वृद्धि की है। राजनीतिक और सामाजिक शक्तियों की वृद्धि के कारण कोई एक शक्ति राज्य राजनीति पर हावी होने की स्थिति में नहीं है।

विप्लव सम्बन्धी समस्याएँ विकास, अन्तर-नृजातीय सम्बन्धों तथा स्वायत्तता आदि मामलों से सम्बद्ध हैं। विप्लव राष्ट्र-राज्य या उसका विवरण देने वालों के खिलाफ दिशा-निर्देशित होता है और नृजातीय उपद्रवों तथा नृजातीय समूहों के मध्य संघर्ष को जन्म देता है। विप्लव की घटना भारत के लिए कोई नई नहीं है और अस्सी के दशक में तो इसने अन्य राज्यों में भी अपने पाँव पसार लिये। सत्तर के दशक तक राज्य स्तरीय नेताओं व दलों ने प्रबल दल प्रणाली को चुनौती दी थी। विप्लव आन्दोलन संघ-निर्माण अभिगम के समर्थन में केन्द्र के राष्ट्र-निर्माण अभिगम को समांगी बनाये जाने पर आपत्ति करते हैं। कुछ मामलों में विप्लव स्वायत्त आन्दोलन

www.neerajbooks.com

या बाहरी व्यक्तियों के विरुद्ध आन्दोलन का उपजात रहा है। इस प्रक्रिया में नव समूह स्वायत्तता या आत्म निर्णयन की माँग करते हैं।

स्वपरख अभ्यास-प्रश्न

प्रश्न 1. स्वतन्त्रता के पश्चात प्रथम दो दशकों में भारत में राज्यीय राजनीति के प्रभावी लक्षण क्या रहे?

उत्तर–स्वतन्त्रता के उपरान्त प्रथम दो दशकों में राज्यों की राजनीति केन्द्र के प्रभाव में ही अंकुरित हुई और भारत में राष्ट्र-राज्य निर्माण के अनुशीलन में इसने अपना योगदान दिया। इस अवधि में विकास के नेहरूवादी आदर्श और कांग्रेस के एक दलीय प्रभुत्व ने ही भारत में राजनीति को नई दिशा दी।

इकबाल नारायण के शब्दों में, ''नेहरू के जीवन काल में ही भारत ने राज्य आधारित क्षेत्रीय राजनीति में प्रवेश कर लिया था, उनकी मृत्यु ने इस प्रक्रिया को तीव्रता प्रदान कर दी।''

पण्डित नेहरू 1963 में 'कामराज योजना' के माध्यम से केन्द्र और राज्य की राजनीति पर एक बार फिर से नियन्त्रण स्थापित करना चाहते थे, किन्तु इसमें उन्हें आंशिक सफलता ही प्राप्त हुई। उत्तर प्रदेश में सत्ता-परिवर्तन उनकी इच्छानुसार नहीं हुआ और गुजरात में भी नेतृत्व परिवर्तन उनकी इच्छा के विरुद्ध हुआ। **जे.डी. सेठी** के शब्दों में, ''नेहरू के अन्तिम दिनों में राजसत्ता केन्द्र से राज्यों की ओर उन्मुख हो गयी थी।''

इस काल में राज्य राजनीति के प्रमुख लक्षण निम्नलिखित थे–

***(i)* उत्तराधिकारियों का चयन और राज्य**–नेहरू काल की तुलना में उत्तर-नेहरू काल में राज्य राजनीति के कर्णधार कितने अधिक प्रभावशाली हो गये थे, इसका पता इस बात से लग जाता है कि जब मई, 1964 और जनवरी, 1966 में प्रधानमन्त्री का पद रिक्त हुआ, तो नेहरू जी के उत्तराधिकारी के चयन में राज्य नेताओं ने अत्यधिक महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की। 1966 में राज्य नेताओं की भूमिका सर्वाधिक निर्णयकारी थी।

वीनर के शब्दों में, ''व्यवहार के अन्तर्गत प्रधानमन्त्री के चयन की प्रक्रिया से संसदीय नेतृत्व की अपेक्षा राज्यों के नेतृत्व ने निर्णयकारी भूमिका अदा की।

***(ii)* राज्यों में गुटबन्दी**–नेहरू जी के बाद के युग में निरन्तर असन्तोष में वृद्धि और कांग्रेस में शिखर व्यक्तित्व का अभाव आदि कारणों से राज्यों में गुटबन्दी अत्यधिक तीव्र हो गयी और विभिन्न राज्यों में कांग्रेस के ही एक वर्ग ने कांग्रेस से सम्बन्ध-विच्छेद कर क्षेत्रीय दलों का निर्माण किया। इनमें जनता पार्टी (राजस्थान), केरल कांग्रेस (केरल), बंगाल कांग्रेस (प. बंगाल) आदि प्रमुख दल थे।

***(iii)* विरोधी दल और गठबन्धन**–चतुर्थ आम चुनाव के पहले विरोधी दलों द्वारा इस राजनीतिक सत्य को अंगीकार कर लिया गया कि अकेले रहकर राज्य स्तर पर भी सत्ता प्राप्त नहीं की जा सकती। इसलिए चौथे आम चुनाव के पूर्व चुनाव मोर्चे के रूप में और चुनावों के उपरान्त संविद सरकारों के रूप में विरोधी दलों द्वारा गठबन्धनों का निर्माण किया गया।

***(iv)* क्षेत्रवाद**–राजनीति में नेहरू जैसे महान व्यक्तित्व के अभाव और अन्य अनेक कारणों से इस काल में राज्यों की राजनीति में क्षेत्रीयतावादी प्रवृत्तियाँ हावी हो गयीं और कुछ राजनीतिज्ञों द्वारा ऐसी असंगत बातें कही जाने लगीं, जिनकी तार्किक परिणति भारतीय संघ से सम्बन्ध-विच्छेद होता। इन प्रवृत्तियों की प्रबलता तमिलनाडु, पंजाब और असम जैसे राज्यों में परिलक्षित हुई।

राज्यीय राजनीति के प्रभावी होने का एक अन्य परिणाम यह हुआ कि पहले योजना सम्बन्धी कार्यों में योजना आयोग की भूमिका अधिक महत्त्वपूर्ण थी, किन्तु अब मुख्यमंत्रियों ने इस बात पर बल देना शुरू कर दिया कि योजना सम्बन्धी अन्तिम निर्णय उनके द्वारा ही किये जाने चाहिये।

सत्तर का दशक और राज्यीय राजनीति–इस काल में राज्यीय राजनीति के प्रमुख लक्षण निम्नलिखित थे–

1. राज्यों में कांग्रेस के वर्चस्व का ह्रास–अब तक राज्यों में भी सत्ता पर कांग्रेस दल का वर्चस्व था, किन्तु चौथे आम चुनावों द्वारा राज्यों की सत्ता पर कांग्रेस के इस एकाधिकार को समाप्त कर दिया गया, क्योंकि कांग्रेस 17 में से 8 राज्यों में बहुमत प्राप्त करने में असफल रही। ये थे बिहार, केरल, मद्रास, उड़ीसा, पंजाब, राजस्थान, उत्तर प्रदेश और प. बंगाल। इस प्रकार राज्यों में एक दल की प्रमुखता के स्थान पर प्रतियोगीय दलीय व्यवस्था स्थापित हुई।

डॉ. सुभाष कश्यप के शब्दों में, ''इस काल की राज्य राजनीति का सबसे प्रमुख लक्षण है–कांग्रेस की शक्ति का ह्रास और गैर-कांग्रेसी दलों की बढ़ती हुई शक्ति।''

2. गठबन्धन सरकार–जनता ने किसी एक विरोधी दल को विश्वास देने के बजाय विभिन्न विरोधी दलों में अपने विश्वास को बाँट दिया था। इसका परिणाम यह हुआ कि एक दलीय सरकार के स्थान पर गठबन्धन सरकार कायम हो गयी, यह गठबंधन जो वैचारिक सभ्यता पर केन्द्रित होने के बजाय बेमेल-अवसरवादी गठबन्धन था। सरकार के भागीदारों में प्रशासनिक कुशलता, सामूहिक उत्तरदायित्व तथा जन उत्तरदायित्व के साथ ही अनुशासन की भावना का अभाव था और ये सभी कारक इन सरकारों की असफलता के कारण बने।

3. दल-बदल–दल-बदल भारतीय राजनीति का एक हिस्सा रहा है, किन्तु 1966 के बाद राज्यों में यह स्थिति अत्यधिक भयावह हो गयी। चतुर्थ आम चुनाव और फरवरी, 1969 के चुनावों के मध्य राज्यों और संघशासित क्षेत्रों की विधानसभाओं के प्राय: 3500 सदस्यों में से लगभग 550 ने अपनी राजनीतिक आस्थाओं में परिवर्तन किया। बहुत-से विधायकों ने एक से अधिक बार और दो वर्ष की अवधि में एक हजार से अधिक दल-बदल हुए। इसकी

www.neerajbooks.com

तुलना में चौथे आम चुनाव से पूर्व के दशक में दल-बदल के कुल 542 मामले प्रकाश में आये, जो दोतरफा थे–कांग्रेस से विरोधी दलों और विरोधी दलों से कांग्रेस की ओर। दल-बदल की घटनाएँ उत्तर प्रदेश, राजस्थान, मध्य प्रदेश, हरियाणा, पंजाब, बिहार और पश्चिम बंगाल के राज्य तथा मणिपुर, पाण्डिचेरी के संघशासित क्षेत्रों में अधिक देखी गयी। इससे राज्यों की राजनीति में अत्यधिक अस्थिरता व्याप्त हो गई। फलस्वरूप राजनीति का स्वरूप विकृत हो गया।

4. राजनीतिक अस्थिरता–बेमेल गठबन्धन सरकारों और राजनीतिक दल-बदल का स्वाभाविक परिणाम राजनीतिक अस्थिरता से कम कुछ भी नहीं हो सकता था और जो हुआ। चतुर्थ आम चुनाव के 15 माह के उपरान्त ही हरियाणा विधानसभा के चुनाव करने पड़े और फरवरी, 1969 में उत्तर प्रदेश, पश्चिम बंगाल, बिहार और पंजाब विधानसभा के चुनाव हुए। फरवरी, 1967 से फरवरी, 1969 के मध्य बिहार में 6 सरकारें बनीं और इसमें सर्वाधिक चलने वाली सरकार की अवधि 9 माह 25 दिन थी। इस अवधि में राज्यों में राष्ट्रपति शासन लागू करना एक आम बात हो गयी। इससे केवल कुछ राज्य ही बच पाये।

5. आन्दोलन की राजनीति–चतुर्थ आम चुनाव के पहले और बाद में राज्य स्तर पर आन्दोलनों की राजनीति अत्यधिक बढ़ गयी। विद्यार्थी, श्रमिक वर्ग, सरकारी कर्मचारी, बैंक कर्मचारी और व्यापारी सभी ने अपने-अपने ढंग से आन्दोलन की राजनीति को स्वीकार किया और अनेक शासक दलों ने अपने संकुचित राजनीतिक स्वार्थों की दृष्टि से इसे गति प्रदान की। कुछ राजनीतिक दलों द्वारा 'अंग्रेजी हटाओ' और 'छोटी जोत पर लगान समाप्ति' आदि विषयों पर आन्दोलन किये।

6. केन्द्र से संघर्ष और राजनीति–कुछ पक्षों द्वारा 1967 के आरम्भ में यह आशा प्रकट की गयी थी कि केन्द्र की कांग्रेसी सरकार और कुछ राज्यों की गैर-कांग्रेसी सरकारों के मध्य अच्छे सम्बन्ध बने रहेंगे, किन्तु 1967 के मध्य से ही इस स्थिति को आघात पहुँचने लगा और यह धारणा निर्मूल सिद्ध हुई। राज्यपाल की नियुक्ति आचरण, राज्यों में राष्ट्रपति शासन लागू करने, घेराव और औद्योगिक विवादों के सम्बन्ध में राज्य सरकार के दृष्टिकोण, वित्तीय संसाधनों के बँटवारे, राज्यों को खाद्यान्न की सहायता तथा केन्द्रीय सुरक्षा दल भेजने आदि विषयों को लेकर राज्यों और केन्द्र में विवाद तथा संघर्ष की स्थिति उत्पन्न हो गयी।

सी.एस. पण्डित के शब्दों में, "1967 के पूर्व केन्द्र और राज्यों के बीच जो भी विवाद होते थे, उन्हें दल के भीतर ही हल कर लिया जाता था, लेकिन अब यह सम्भव नहीं था। अब प्रत्येक मतभेद सार्वजनिक वाद-विवाद का विषय बनने लगे।"

प्रश्न 2. कांग्रेस प्रणाली अथवा प्रबल-दल प्रणाली के पतन के क्या कारण रहे?

उत्तर–कांग्रेस प्रणाली के पतन के कारण चतुर्थ आम चुनाव में कांग्रेस की असफलता के निम्नलिखित कारण रहे–

1. चौथे आम चुनाव कांग्रेस ने पण्डित नेहरू जैसे महान व्यक्तित्व के बिना ही लड़े। भारत पाक-युद्ध ने शास्त्री जी के रूप में राष्ट्रीय कांग्रेस और राष्ट्र को प्रभावशाली व्यक्तित्व प्रदान किया था, किन्तु वे अधिक समय तक नहीं रहे। जनवरी, 1966 में श्रीमती इन्दिरा गाँधी ने प्रधानमन्त्री पद ग्रहण किया था, किन्तु उनका व्यक्तित्व नेहरूजी की तुलना में गौण ही था।

2. 1962 में चीन द्वारा भारत पर आक्रमण और भारत की पराजय ने जनता की नजरों में कांग्रेसी शासन को असफल सिद्ध कर दिया। साथ ही कांग्रेस 1967 तक चीन से भारतीय प्रदेश मुक्त न करा सकी, जिस पर चीन ने 1962 की लड़ाई में कब्जा कर लिया था।

3. 1967 के पूर्व की दुर्बल आर्थिक स्थिति भी कांग्रेस की असफलता में महत्त्वपूर्ण कारक सिद्ध हुई। खाद्यान्नों के अभाव और अत्यधिक महँगाई से जनता पीड़ित थी और साधारण जनता के लिए अपना भरण-पोषण करना दुरूह होता जा रहा था। शासन द्वारा रुपये के अवमूल्यन करने से सरकार की प्रतिष्ठा गिरी और आर्थिक कठिनाइयों में वृद्धि हो गयी।

4. विरोधी दलों द्वारा संचालित कुछ आन्दोलनों का भी चुनाव परिणामों पर व्यापक प्रभाव पड़ा, जैसे–उत्तर प्रदेश में कर्मचारियों के महँगाई भत्ता बढ़ाना। आन्दोलन ने कांग्रेस को क्षति पहुँचाई तो गो-वध विरोधी आन्दोलन ने जनसंघ को लाभ पहुँचाया।

5. विद्यार्थियों और युवा वर्ग में कांग्रेस शासन के प्रति व्यापक असन्तोष व्याप्त था और मद्रास जैसे कुछ राज्यों में इसने निर्णायक भूमिका अदा की।

6. 1967 के चुनाव के पूर्व ही कांग्रेस में गुटबन्दी अपने चरम पर पहुँच गयी थी और कांग्रेस के ही कुछ नेताओं द्वारा कांग्रेस से पृथक् होकर नए गुटों का निर्माण कर लिया गया। अजय मुखर्जी के नेतृत्व में पश्चिम बंगाल में बंगाल कांग्रेस, बिहार में महामाया प्रसाद के नेतृत्व में जनक्रान्ति दल और राजस्थान में कुम्भाराम के नेतृत्व में जनता पार्टी ऐसे दल थे, जिन्होंने कांग्रेस पार्टी की पराजय को सरल बना दिया। साथ ही आन्तरिक गुटबन्दी भी कांग्रेस की हार का कारण बनी।

7. जनता राजनीतिक परिवर्तन चाहती थी और विरोधी दलों को राजनीति में सकारात्मक भूमिका अदा करने का अवसर देना चाहती थी, जिससे उनके द्वारा किये गये बड़े-बड़े वादों को परखा जा सके।

छठी लोकसभा चुनाव में कांग्रेस को भारी पराजय का सामना करना पड़ा। इसके लिए निम्नलिखित तत्त्व उत्तरदायी रहे–

1. 1975 में शासन द्वारा आपातकाल की घोषणा की गयी और उसका कारण आन्तरिक अव्यवस्था तथा अराजकता उत्पन्न होने की आशंका बतलाया गया। किन्तु मतदाता इस तथ्य को भली-भाँति समझ गये कि श्रीमती गाँधी द्वारा स्वयं को सत्ता में बनाये रखने हेतु ही आपातकाल घोषित किया गया है। इस आपात्काल में निरंकुश शासन और ज्यादतियाँ परिलक्षित हुईं, जैसे–प्रतिष्ठित राजनीतिक